# 2/20/86 क लेख 86 वर्तमान अव्यवस्था का एकमात्र विकल्प, ''व्यवस्था परिर्वतन''

**बजरंगलाल**

व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं। व्यक्ति समाज निर्माण में महत्वपूर्ण होता है और समाज भी व्यक्ति के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि व्यक्ति समूह ही मिलकर समाज व्यवस्था का निर्माण करते हैं और समाज व्यवस्था हो व्यक्ति का चरित्र निर्माण करती है। व्यवस्था और चरित्र एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के दूसरे को मजबूत करते हैं।

समाज के व्यवस्थित संचालन में व्यक्ति चरित्र की बहुत बड़ी भूमिका है। यदि सामान्य नागरिक का चरित्र ही ठीक नहीं है तो व्यवस्था ठीक हो ही नहीं सकती। व्यक्ति के चरित्र के तीन प्रभाव होते हैं (1)व्यक्तिगत (2)समाज पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाले (3)अपराधिक। व्यक्ति के व्यक्तिगत आचरण में व्यवस्था की न कोइ भूमिका रही है न होनी चाहिये। यह कार्य सिर्फ धर्म प्रमुखों का होता है जो अपने उपदेशा से चरित्र निर्माण किया करते हैं। समाज पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाले आचरण में धर्म प्रमुखों के उपदेशों का भी महत्व होता है और व्यवस्था के नियम कानूनों का भी। किन्तु व्यक्ति के अपराधिक चरित्र पर नियंत्रण का एकमात्र दायित्व व्यवस्था का ही होता है। इसमें धर्म प्रमुखों का सामाजिक संस्थाओं का दायित्व या तो शून्य होता है या नगण्य। यदि व्यक्ति के चरित्र में कोई अपराधिक गिरावट आती है तो वह व्यवस्था की विफलता के ही लक्षण और परिणाम है। किन्तु इस निष्कर्ष के साथ साथ यह बात भी उतनी ही सच है कि व्यक्ति का गिरता चरित्र हो व्यवस्था की विफलता का कारण है। व्यवस्था का निर्माण भी व्यक्ति ही करता है तथा कार्यान्वयन भी। यदि आम नागरिक के चरित्र का ही पतन हुआ तो न व्यवस्था ठीक होगी न ही कार्यान्वयन। व्यक्ति के चरित्र निर्माण के लिये एक अच्छी और मजबूत व्यवस्था आवश्यक है और एक अच्छी और मजबूत व्यवस्था के लिये आम नागरिकों के चरित्र का स्तर भी अच्छा होना आवश्यक है। न चरित्र के अभाव में व्यवस्था में सुधार हो सकता है न व्यवस्था में सुधार हुए बिना चरित्र में सुधार हो सकता है। दोनों ही एक दूसरे पर पूरी तरह निर्भर है।

वर्तमान समय में आम नागरिक चरित्र म तेजी से गिरावट आई है तथा आती जा रही है। अपराधिक चरित्र का ग्राफ भी तेजी से बढ़ा है। अपराधिक चरित्र की गिरावट का एकमात्र कारण है असल व्यवस्था। यदि व्यवस्था ठीक होती तो आम नागरिक चरित्र में सुधार संभव था किन्तु जब व्यवस्था में ही अपराधियों की घुसपैठ हो चुकी हो तब चरित्र निर्माण बिल्कुल असंभव है। वर्तमान व्यवस्था मं लगभग निन्यान्नबे प्रतिशत भ्रष्टाचार है तथा करीब सोलह प्रतिशत अपराधिक चरित्र का समावेश है। अपराधिक चरित्र का प्रतिशत लगातार बढ़ ही रहा है। यदि व्यवस्था में पांच प्रतिशत से अधिक हो जाये तो व्यवस्था चरित्र निर्माण के विपरीत चरित्र पतन की सहायक हो जाती है। वर्तमान समय में समाज के आम नागरिक चरित्र में भ्रष्टाचार निन्यान्नबे प्रतिशत तक तथा अपराधिक चरित्र पूरे भारत का औसत दो प्रतिशत है। व्यवस्था के गिरते चरित्र के परिणाम स्वरूप आम नागरिक चरित्र में यह अपराधिक चरित्र का औसत लगातार बढ़ ही रहा है।

चूँकि व्यवस्था में किसी तरह के सुधार के लिये आम नागरिकों के अपराधिक चरित्र में सुधार अनिवार्य है तथा आम नागरिकों के अपराधिक चरित्र में सुधार के लिये एक साफ सुथरी व्यवस्था भी अनिवार्य है अतः जो लाग बिना व्यवस्था में सुधार किये चरित्र निर्माण के पक्षधर हैं वे पूरी तरह भ्रम में हैं। गायत्री परिवार, आर्य समाज, आसाराम बापू तथा रामदेव जी सरीखे सैकड़ों सन्त या संस्थाएँ पूरी ताकत से चरित्र निर्माण में लगी है किन्तु अपराधिक चरित्र में गिरावट बढ़ती ही जा रही है क्योंकि ये प्रयत्न व्यक्ति के व्यक्तिगत आचरण सधार तक सीमित है, अपराधिक आचरण के लिये ये प्रभाव शून्य हैं। अतः इस चरित्र निर्माण प्रणाली से किसी भी रूप में चरित्र पतन क रूकने की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। इसो तरह सर्वोदय, वामपंथी दल, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ आदि लगातार पचपन वर्षो से वर्तमान व्यवस्था के सुधार में लगे हैं किन्तु व्यवस्था लगातार बिगड़ती जा रही है। व्यवस्था तो बिगड़ती ही जा रही है, इन संस्थाओं के चरित्र में भी लगातार गिरावट आ रही है क्योंकि आम नागरिक के चरित्र में गिरावट हो और व्यवस्था सुधरने लगे यह असंभव है। कहाँ से लायेंगे आप अच्छ लोग ? यदि समाज में भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता जातिवाद, आर्थिक असमानता तथा श्रमशोषण मे कमी नहीं हुई तो आप चाहे कितना भी प्रयत्न करें किन्तु आप व्यवस्था म कोई सुधार नहीं कर सकते। आखिर कार समाज के ही चुने हुए लोगों को आगे आकर व्यवस्था बनानी है और समाज के ही व्यक्तियों को ऐसे लोगो का चुनाव करना है। यदि चुनने वाला और चुना जाकर व्यवस्था करने वाला ही चरित्र पतन का शिकार है तो व्यवस्था का कोई सुधार हो ही नहीं सकता।

प्रश्न उठता है कि चरित्र व्यवसायी से सुधरेगा और व्यवस्था चरित्र से और भारत में अभी दोनों का संकट है। चरित्र पतन से व्यवस्था बिगड़ रही है और व्यवस्था बिगडने से चरित्र गिर रहा है तो आखिर हमारे पास मार्ग क्या ह ? मेरे विचार में हमारे पास इसका एक ही मार्ग है ''व्यवस्था परिवर्तन।'' भारत की वर्तमान व्यवस्था पूरी तरह दायित्व केन्द्रित है। व्यक्ति के व्यक्तिगत आचरण, तथा सामाजिक आचरण में परिवर्तन या सुधार का दायित्व व्यवस्था ने स्वीकार किया हुआ है। अब हमें विकेन्द्रित दायित्व व्यवस्था बनानी चाहिये अर्थात शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप न्यूनतम करके सभी दायित्व परिवार, ग्राम, जिला, प्रदेश को दे दिय जायें। शासन व्यक्ति के अपराधिक चरित्र सुधार तक स्वयं को सीमित कर ले। गांधी जी इस संबंध म पूरी तरह स्पष्ट थे। उन्होंने यह कभी नहीं सोचा था कि स्वतंत्र भारत में गाम स्वराज्य का पूरा अर्थ ही उलट दिया जायेगा। उनका सीधा सीधा कथन था कि नीचे से नीचे वाली इकाई की भी अपनी स्वतंत्र न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका होनी चाहिये। यह व्यवस्था भारतीय सविधान करे। हमारे लोग गॉवों में जाकर नशा मुक्ति, अन्त्योदय, गाम स्वावलम्बन, स्वरोजगार आदि की दिशा दें। शासन ने तो गॉवों को निर्णय का अधिकार दिया हो नहीं किन्तु हमारे गांधीवादी मित्र नशामुक्ति, अन्त्योदय और ग्राम स्वावलम्बन में लग गये। गांधीवादी संस्थाओं के लोग भी जब ग्राम स्वराज्य सम्मेलनों में अन्त्योदय, जैविक खेती, नशामुक्ति अन्त्योदय और ग्राम स्वावलम्बन में लग गये। गांधीवादी संस्थाओं के लोग भी जब ग्राम स्वराज्य सम्मेलनों में अन्त्योदय, जैविक खेती, नशामुक्ति और स्वावलम्बन की योजनाओं पर चर्चा करते हुए दिखते हैं तो मुझे लगता है कि हमने जीवित गांधी की बात तो सुनी नहीं, मृत गांधी की बात को गांठ बांध कर पचपन वर्षो से व्यवस्था परिवर्तन में लगे हैं।

किन्तु निराश होने की जरूरत नहीं। पिछले छः माह से सर्वोदय ने व्यवस्था परिवर्तन का काम शुरू किया है। माननीय ठाकुरदास जी बंग के मार्गदर्शन में सर्वोदय ने संविधान में गॉव और जिले के अधिकारों की सूची जोडने के लिये जनमत जागरण का काम शुरू किया है। आशा की एक किरण जगी है। अभी एक माह पूर्व ही माननीय गोविन्दाचार्य जी ने गिरते हुए चरित्र और व्यवस्था सुधार के संबंध मं वाराणसी में एक सम्मेलन रखा था जिसम

मैं भी आमंत्रित था। वहॉ भी स्वदेशी, स्वावलम्बी, जैविक खेती, अन्त्योदय आदि की वही घिसी पिटी बात थी। रामबहादुर राय जी ने व्यवस्था परिवर्तन का पक्ष एक सशक्त प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत किया और लम्बी चर्चा के बाद प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार हुआ। गोविन्दाचार्य जी, साधक जी, रामबहादर राय जी, मैं, तथा तीन और लोगों को मिलाकर सात लोगों की एक कमेटी बनी जो आगे की दिशा तय करेगी। बीमारी लाईलाज नहीं हुई है। सिर्फ चरित्र निर्माण, व्यवस्था सुधार या व्यवस्था परिवर्तन के नाम पर वातावरण में गहरी धुंध छाई हुई है। व्यवस्था परिवर्तन के नाम पर केन्द्रित व्यवस्था के पक्षधर इस धुंध को और गहरा कर रहे हैं। सर्वोदय के जनजागरण अभियान ओर गोविन्दाचार्य जी के दिशा खोज प्रयत्नों ने ऐसी आशा जगाई है कि शीघ्र ही नई विकेन्द्रित व्यवस्था की ओर देश आगे बढ़ेगा। व्यवस्था बदलगी, व्यवस्था सुधरेगी और तब भारत के आम नागरिकों के भी चरित्र में उल्लेखनीय सुधार होगा।

# समीक्षा ज्ञानतत्व अंक 82

## 21/1/86 ख लेख  अपराध और अपराध नियंत्रण

ज्ञानतत्व सोलह से इकतीस अक्टूबर में मैंने अपराध और अपराध नियंत्रण विषय पर एक विस्तृत और विवेचनात्मक लेख लिखा था। उक्त लेख के संबंध में अनेक प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुई। पाठकों ने लेख का बहुत पसंद किया। कई पाठकों ने कुछ प्रश्न किये, या अधिक स्पष्टता की मांग की। मुख्य प्रश्न निम्नांकित रहे :–

(1) पृष्ठ एक पर लिखा गया ''मूल अधिकार का आशय भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकरों से नहीं है। संविधान में मूल अधिकारों के संबंध में अनेक विसंगतियॉ मौजूद है।'' वे विसंगतियॉ क्या है ?

(2) पृष्ठ एक पर ही आपने अपराधों की कुल संख्या पॉच बताई। इस सूची में भ्रष्टाचार शामिल नहीं है। आपकी समझ से भ्रष्टाचार अपराध है या गैर कानूनी ? यदि यह गैर कानूनी है तो आप इस परिभाषा पर फिर से विचार करें।

(3) पृष्ठ तीन पर आपने लिखा कि अधिकांश अपराध स्वार्थ के कारण होते हैं। मजबूरी से होने वाले अपराधों की संख्या नाममात्र की होती है। किन्तु आपने मजबूरी में किये जाने वाले अपराधों की सजा न हो, ऐसा प्रावधान नहीं सुझाया। क्या भूख से तड़प रहा व्यक्ति रोटी चुराकर खा ले तो उसे सजा देना उचित है ?

(4) हम लोगों ने अपराध नियंत्रण के लिये हृदय परिवर्तन की बहुत प्रशंसा सुनी। किन्तु आपने हृदय परिवर्तन की अपेक्षा दण्ड प्रक्रिया को अधिक महत्व दिया। क्या
हृदय परिवर्तन की अपराध नियंत्रण में कोई भूमिका नहीं है?

(5) आपने पृष्ठ दो पर मकान किराया कानून का भरपूर विरोध किया। इसे और स्पष्ट करें।

(6) आपने पृष्ठ छः पर लिखा कि पुलिस और न्यायालय पर होने वाले व्यय को सम्पूर्ण बजट के एक प्रतिशत से बढ़ाकर बीस प्रतिशत कर दिया जावे। दो वर्ष बाद इसे घटाकर पांच प्रतिशत किया जा सकता है। आप इतना बीस बीस गुना व्यय बढ़ाने की बात कर रहे हैं तो यह धन आयेगा कहॉ से ?

(7) पिछले कई माह से आपके लेखों को पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि आप मानवाधिकार संगठनों के विरूद्ध हाथ धोकर पीछे पड़ गये हैं। हर अंक में उनकी कुछ न कुछ आलोचना होती है। ऐसा क्यों ?

(8) आपने पृष्ठ आठ में गुप्त मुकदमा प्रणाली की सिफारिश की है। क्या यह प्रणाली अलोकतांत्रिक नहीं है ? क्या विश्व समुदाय ऐसी किसी प्रणाली का समर्थन करेगा ?

(9) आपने पृष्ठ नौ में लिखा ''दण्ड का मानवीय होना भी एक नासमझी की बात है।'' आप अमानवीय तरीके से दण्ड के पक्षधर क्यों है ?

(10) आपने पृष्ठ दस में लिखा कि न्यायालय में दोष सिद्धि के पूव किसी को निर्दोष मानना एक गलत सोच है। क्या आपकी नजर में पुलिस जिसे अपराधी कह दे उसे ही अपराधी मान लेना चाहिये ?

उत्तर– भारतीय संविधान मं म्ल अधिकार संबंधी अनेक विसंगतियॉ हैं। मुख्य विसंगति है परिभाषा की। भारतीय संविधान मूल अधिकार को संविधान प्रदत्त मानता है किन्तु मेरे विचार में संविधान मूल अधिकार न देता है न घोषित करता है बल्कि वे तो उसके प्राकृतिक अधिकार है। ये अधिकार सम्पूर्ण विश्व में एक समान है और यदि कोई संविधान इन अधिकारों में कटौती करता है तो वह संविधान दोषी माना जायेगा। मूल अधिकार चार है (1)जीने का (2)अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (3)संपत्ति (4)स्वनिर्णय। भारतीय संविधान सम्पत्ति और स्वनिर्णय को मूल अधिकार नहीं मानता। इसके बदले में धार्मिक स्वतंत्रता, आदि को शामिल किया गया है जो सब स्वनिर्णय में शामिल है। अब भारत में शिक्षा आर रोजगार को मूल अधिकार में शामिल करने की मॉग का एक फैशन सा चल पड़ा है। मेरी परिभाषा अनुसार दोनों अभी मूल अधिकार है। अब नई व्यवस्था द्वारा जो शामिल करने की बात है वह वास्तव में मूल अधिकारों का उल्लंघन होगा।

भ्रष्टाचार दो प्रकार का होता है (1)मालिक की सहमति या स्वीकृति से (2)मालिक को धाखा देकर। जो भ्रष्टाचार मालिक की सहमति से हो वह अपराध नहीं है किन्तु जो भ्रष्टाचार मालिक को धोखा देकर किया जाय वह धोखा का अपराध है। किसी का मालिक उस व्यक्ति को कहा जा सकता है जिसे उस काम करने वाले की नियुक्ति या निष्कासन का अधिकार हो। आम तौर पर भ्रष्टाचार को अपराध मानने की परंपरा है किन्तु सूक्ष्म विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भ्रष्टाचार अपराध नहीं है।

भूख से तड़प रहे व्यक्ति द्वारा चुराकर रोटी खाने को अपराध मानकर सजा दें या छोड़ने का कानून बने यह निर्णय कठिन है। न्याय और व्यवस्था का समन्वय होना चाहिये। यदि मजबूरी में किये गये अपराध को सजा से मुक्त रखने का प्रावधान बना दें ता लाभ कम और हानि अधिक होगी। यह तय करना ही कठिन हो जायेगा कि कौन सा कार्य मजबूरी है और कौन सा जानबूझकर। एक युवक मजबूरी में बलात्कार करे तो कैसे छूट संभव है ? कानूनों में विशेष छूट न होते हुए भी न्यायाधीश इतना स्वयं देखते हैं। साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि यदि रोटी चुराना उसकी प्राणरक्षा के लिये मजबूरी थी तो उसे यदि कुछ सजा हुई तो कोई अन्याय नहीं हो गया। मैं चाहता हूँ कि काल्पनिक या अपवाद स्वरूप घटनाओं को आधार बनाकर व्यवस्था को कमजोर करना उचित नहीं होगा। मेरा अपना अनुभव बताता है कि प्रवृत्ति जन्य अपराध करके उस मजबूरी बताना फैशन बन चुका है। अतः व्यवस्था बनाते समय इससे बचना चाहिये।

अपराध नियंत्रण में हृदय परिवर्तन भी भूमिका की प्रशंसा मैंने भी बहुत सुनी है किन्तु न कहीं प्रत्यक्ष दिखा न प्रयोगों से सिद्ध हुआ। प्राचीन समय में भी दो हो ऐसी प्रमुख घटनाएँ, एक अंगुलो माल की ओर दूसरी बाल्मीकि की, सुनी जाती है जिनका उपदेशों से हृदय परिवर्तन हुआ है। अन्य अपराधी गतिविधियों पर ताकत और भय से ही नियंत्रण किया जाता रहा है। अशोक का हृदय परिवर्तन खून देखकर हुआ था। तो क्या हमें अब इतनो हत्याओं और खून की प्रतीक्षा करनी होगी। हृदय परिवर्तन के प्रयास उच्च आदर्श है किंतु व्यावहारिक नहीं। हृदय परिवर्तन के प्रयास किये जाने चाहिये, किन्तु व्यवस्था की कीमत पर नहीं। दण्ड से सुधार संभव नहीं यह घिसा पिटा मुहावरा मैं भी बहुत सुनता हूँ और मैंने रामानुजगंज में दोनों का प्रयोग भी बहुत किया किन्तु दण्ड व्यवस्था ही सफल हुई, हृदय परिवर्तन का प्रभाव शून्य रहा। एक पाठक न लिखा है कि हृदय परिवर्तन का प्रभाव चमत्कारिक है किन्तु इसलिये हम सफल नहीं हैं कि हमारा स्वयं का स्तर वैसा नहीं है। मेरा उक्त पाठक महोदय से निवदन है कि जब स्तर वाले लोग ही नहीं हैं तो हम अनावश्यक भ्रम फैलाकर व्यवस्था को कमजोर करने की भूल क्यों करें? जब स्तर वाले लोग होंगे तब दण्ड और भय को रोककर हृदय परिवर्तन पर जोर देना शुरू कर देंगे।

मकान किराया कानून पूरी तरह अव्यावहारिक है। अच्छे–अच्छे इमानदार लोगों की नीयत गड़बड़ा जाती है और वे कानून का सहारा लेकर मकान हड़पने का प्रयास करते हैं। इस कानून ने समाज में चरित्र पतन को बहुत बढ़ाया है। किरायादारों के पक्ष में ऐसे कठोर कानून बनाना पूरी तरह गलत था और है। किन्तु आज तक इस पर ध्यान नहीं दिया गया। कितने मारपीट ओर लूट तक के प्रकरण हो रहे है। पूरे भारत में पगड़ी प्रथा का प्रचलन इसी कानून के कारण हुआ। अतः ऐसे अनावश्यक कानून तत्काल खतम करना चाहिये।

अपराध नियंत्रण के लिये मैंने वर्तमान बजट को बोस गुना बढ़ाने का सुझाव रखा है। मेर विचार से धन का अभाव नहीं है। अन्य विभागों की बजट राशि में से यदि एक एक दो दो प्रतिशत बजट कम कर दें तो कोई दिक्कत नहीं होगी। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि आदि से कम कर सकते हैं। सबसे मुख्य बात तो यह तय करना है कि हमारी पहली प्राथमिकता न्याय और सुरक्षा है या शिक्षा स्वास्थ्य और कृषि। आज स्थिति यह है कि शिक्षा, स्वास्थ्य में बजट वृद्धि के लिये निरंतर मांग भी उठती है और आंदोलन भी होते हैं किन्तु पुलिस और न्यायालय के लिये बजट की न कोई मांग उठती है न आंदोलन। इसके विपरीत पुलिस के विरूद्ध आंदोलनों में बहुत रूचि से भाग लिया जाता है। पूरी तरह प्रमाणित हो चुका है कि यदि पांच वर्ष के लिये सरकारी स्कूल बिल्कुल बन्द भी कर दें तो शिक्षा में कोई कमी नहीं होगी। किन्तु यदि एक माह क लिये पुलिस न्यायालय बंद कर दें तो भारी संकट आ जायेगा। हमारे स्कूल, अस्पताल अभी Over loaded नहीं हैं क्योंकि उनका विकल्प उपलब्ध है किन्तु पुलिस न्यायालय का विकल्प नहीं होने से ये Over loaded हैं। एक षड़यंत्र के अन्तर्गत गरीबों के नाम पर योजनाएँ बनवा बनवाकर भ्रष्टाचार के अवसर पैदा करने की आदत हमें बदलनी चाहिये।

पिछले कुछ अंकों में मैंने मानवाधिकार संगठनों के विषय में लिखा है। मेरे लिखे में क्या गलत है यह बात कभी नहीं बताई गई। इस संबंध में अगले अंक मे कुछ विशेष लेख लिखा जायेगा। उस लेख से और बातें स्पष्ट हो जायेंगी।

मैंने गुप्त मुकदमा प्रणाली का सुझाव दिया। यह प्रणाली अलोकतांत्रिक कैस हो गई ? लोकतंत्र का अर्थ सुव्यवस्था है, अव्यवस्था या कुव्यवस्था नहीं। अपराधी अपराध करके निर्दोष न बच जावे और निर्दोष अपराधी मानकर सजा न पा जावे ये दोनों ही बाते आवश्यक है। वर्तमान समय में अपराधी आम तौर पर निर्दोष प्रमाणित हो रहे हैं। यह लोकतत्र कैसे हुआ? गुप्त मुकदमा प्रणाली से अधिकांश अपराधी सजा पा सकेंगे और निर्दोषों को कोई दिक्कत नहों होगी तब सच्चा लोकतंत्र आयेगा। फिर यह प्रणाली तो सिर्फ अल्पकाल के लिये ही है और वह भी कुछ विशेष आपराधिक क्षेत्रों में। अतः लोकतंत्र में कोइ कमी को बात बिल्कुल निराधार है। विश्व समुदाय इस प्रणाली को अस्वीकार करने का प्रयत्न नहीं करेगा क्योंकि बिना मुकदमा चलाये ही किसी को लम्बे समय तक जेल में रखने के कई प्रावधान भारत में वर्तमान ह। यदि ऐसे प्रावधान का विश्व विरोध नहीं है तो न्यायालयों को विशेष अधिकार देने की व्यवस्था का विरोध क्यों होगा ?

दण्ड और मानवीय ये दोनों विरोधाभासी शब्द हैं। दण्ड अपराधी के अपराध पमाणित होने के बाद उसके मूल अधिकारों पर आक्रमण की एक निर्धारित प्रक्रिया है जो हर हालत में अमानवीय तो होगी ही। किन्तु दण्ड आर अमानवीयता के बीच संतुलन होना आवश्यक है। वर्तमान समय में वह संतुलन बिल्कुल ही असंतुलित हो गया है। सबसे पहले तो यह बात विचारणीय है कि दण्ड का उद्दश्य अपराधी को दण्डित करना मात्र है अथवा समाज में कोई भयोत्पादक संदेश देना भी उसका उद्देश्य है। यदि किसी अपराधी को दण्ड इस तरह दिया जाये कि आम लोगों को पता ही न चले कि क्या और क्यों दण्ड दिया गया तो दण्ड प्रभावहीन हो जायेगा। वास्तव में तो दण्ड अपराधी पर कम और समाज पर अधिक प्रभाव डालने वाला होना चाहिये। जब से दण्ड और मानवता को जोड़ने की कवायद शुरू हुई है तब से दण्ड भय भी कम हो गया है। अतः दण्ड को उस सीमा तक अमानवीय होना चाहिये जिस सीमा तक समाज के तत्कालीन वातावरण में आवश्यक हो। आज जेल का भय न के बराबर है। जेलों में क्षमता से कई गुना लोग बन्द होने के बाद भी अधिकांश आबादी ऐसे कार्यो में संलग्न है कि उनका उपयुक्त स्थान जेल ही है। इस वातावरण के कुछ कारणों में से एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि दण्ड को मानवीय बनाने के प्रयत्न लगातार हो रहे हैं।

मैंने पृष्ठ दस में यह लिखा है कि न्यायालय से अपराध सिद्ध होने के पूर्व किसी को निरपराध मानकर उसकी सहायता करना गलत परंपरा है। व्यक्ति दो प्रकार के नहीं तीन प्रकार के होते हैं (1)निरपराध (2)संदेहास्पद (3)अपराधी। जिस व्यक्ति के विरूद्ध पुलिस ने अपराधी होना मान लिया है किन्तु न्यायालय में अपराध सिद्ध घोषित नहीं हुआ है उसे निरपराध न मानकर संदेहास्पद की श्रेणी में रखा जाना चाहिये। हमारा व्यवहार भी निरपराध, संदेही और अपराधी के साथ बिल्कुल भिन्न भिन्न होना चाहिये। संदेहास्पद लोगों को हमें तब तक निरपराध नहीं मानना चाहिये जब तक अपनी व्यक्तिगत जानकारी में उक्त व्यक्ति का निरपराध होना सिद्ध नहीं है। इसी आधार पर मैंने शंकराचार्य प्रकरण में संत समाज या संघ परिवार द्वारा किये जा रहे

किसी प्रकार के आन्दोलन के विरूद्ध विचार व्यक्त किया था तथा इसी कसौटी पर मैंने इशरत जहॉ की हत्या के विरूद्ध वामपंथियों तथा मानवाधिकारियों के विरोध के विरूद्ध भी विचार व्यक्त किया था। मैं संतुष्ट हूँ कि दोनों ही मामलो में मेरी सोच ठीक सिद्ध हुई है।

## प्रश्नोत्तर

### 12/1/86/ग प्रश्न 1 श्री जगपाल सिंह जी, मेरठ, उत्तर प्रदेश

प्रश्न– आपने ज्ञान तत्व अंक तिरासी पृष्ठ छः और सताइस में लिखा है कि ''मैं आधे अधूरे निष्कर्षो के आधार पर काम शुरू नहीं करता।'' इसके विपरीत पृष्ठ सात ओर ग्यारह में आपने लिखा कि ''दूसरे चरण की चर्चा साथ साथ चलती रहे। पहले राजनेता अपनी मंशा जाहिर करें तो मार्ग बहुत कम समय में निकाल लेंगे।'' मेरे विचार में इन दोनों कथनों में विरोधाभास है जिसे आप दूर नहीं कर रहे। आप चाहते है कि पहले जनता शासन पर दबाव बनाये और शासन आपस पूछे तब आप और मंथन करेंगे। जनता आपसे चाहती है कि आप पहले मंथन करें तब जनता दबाव बनाये शासन पर किन्तु आप मंथन ही बाद में करना चाहते हैं, दबाव पहले। स्वतंत्रता आन्दोलन और सम्पूण क्रान्ति के समय भी यही भूल हुई थी कि दबाव पहले बना और मंथन बाद में हुआ। दुष्परिणाम आपके सामने है। आपसे निवेदन है कि आप वैसी ही भूल न करें और दबाव बनाने के पहले मंथन पूरा कर लें।

उत्तर– मैंन ज्ञान तत्व में जो कुछ लिखा है उसमें कोई विरोधाभास नहीं है। मैंने बार–बार लिखा है कि व्यवस्था परिवर्तन ही एक मात्र मार्ग है और राजनैतिक उच्चश्रृंखलता व्यवस्था परिवर्तन की सबसे बड़ी बाधा। मैंने अन्तिम रूप से निष्कर्ष निकाल लिया है कि इस बाधा को दूर करने हेतु त्रिसूत्रीय संविधान संशोधन अभियान चलाकर जनमत का दबाव बनाया जाये। नई व्यवस्था के प्रारूप पर विचार मंथन चलता रहे। आप यदि पहले विचार मंथन करना चाहें तब बाद में दबाव बने तो आप वैसा करें। मैं आपको साथ दूंगा। किन्तु आप यदि कुछ न करना चाहें, न विचार मंथन और न दबाव तो मैं बात बहादूरों को इस कार्य में अनुपयोगी मानता हूँ। अब तो मुझे काम बहादूर साथियों को आवश्यकता है। आपने स्वतंत्रता आदोलन को भी भूल बता दिया और जे.पी. आन्दोलन को भी। मेरे विचार में स्वतंत्रता आंदोलन एक सा वर्षो के विचार मंथन के बाद शुरू हआ था और असफल भी नहीं हुआ। जे. पी. आन्दोलन अवश्य ही परिस्थिति वश शुरू हुआ और परिणाम भी आंशिक ही दे सका। हम लोग दोनों आंदोलनों के मार्ग दर्शन में सतर्क होकर बढ़ रहे हैं। यही कारण है कि किया और विचार का सामंजस्य किया जा रहा है। निष्क्रिय लोग ही सिर्फ मंथन तक की सोचते और सीमित रहते हैं अन्यथा विचार मंथन और सक्रियता एक दूसरे के पूरक हैं तथा निरंतर साथ चलते रहते हैं।

आप चुनाव सुधारों में लगे हैं। लगे रहिये। मैं त्रिसूत्रीय संविधान संशोधन अभियान और नई व्यवस्था के प्रारूप मंथन में एक साथ लगा हूँ। यदि आप अपने चुनाव सुधारों के अतिरिक्त हमारे कार्य और मंथन में सहयोगी हो सकते हैं तो आपका स्वागत है अन्यथा अनावश्यक प्रश्नोत्तर से कोई लाभ नहीं है।

### 12/1/86 ग प्रश्न–2श्री योगेश्वर प्रसाद सती, जोशीमठ, उत्तरांचल

**विचार**– ज्ञानतत्व में आपके विचार पढ़कर प्रभावित हूँ। आप, ठाकुरदास जी बंग, गोविन्दाचार्य जी आदि नई व्यवस्था पर गंभीर विचार मंथन भी कर रहे हैं तथा सक्रियता भी दिखा रहे हैं, ऐसा पंजाब केशरी तथा कुछ अन्य समाचारपत्रों में प्रकाशित समाचारों से ज्ञात हुआ। रिषिकेष के प्रमोद वात्सल्य जी तो किया हैं ही।

हमारी इच्छा है कि आप 24,25,26 दिसम्बर को जोशीमठ में आयोजित हमार कार्यक्रम में आने की कृपा करें। वहॉ हम आपका अभिनन्दन भी करेंगे तथा आपसे मार्गदर्शन भी ग्रहण करेंगे।

हम इस त्रिदिवसीय आयोजन में शासन से मांग करेंगे कि वह पीपलकोटि जोशीमठ विद्युत उत्पादन परियोजना इस क्षेत्र के लागों को ही चलाने की अनुमति दे। साथ ही हम शासन से यह भी मांग करेंगे कि वह केन्द्र में एक राष्ट्रीय सरकार का गठन कर।

आप इतना श्रम कर रहे हैं किन्तु मेरी अनदेखी कर रहे हैं ऐसा लगता है कि मैं दुर्बल हूँ इसीलिये आप मेरी मदद नहीं करना चाहते। यदि हम आप साथ हो जावें तो अल्पकाल में ही बहुत सफलता मिल सकती है।

उत्तर– चौबीस से छब्बीस अक्टूबर के कार्यक्रम का आमंत्रण मिला। मेरा आना संभव नहीं हैं। मुझे बहुत व्यस्त रहना पड़ता है। अतः मैं सिर्फ उन्हीं बैठकों या सम्मेलनों में जा पाता हूँ जहॉ या तो किसी राष्ट्रीय सरकार हेतु मांग कर रहे हैं वह मेरी सक्रियता का विषय नहीं हैं। आपने मेरे अभिनन्दन का प्रस्ताव रखा है। आपस में विचारों का आदान प्रदान होने के पूर्व ही आप मेरा अभिनन्दन करें और मैं स्वीकार करूँ यह बात हम दोनों के ही लिये उचित नहीं। आप ऐसा महसूस करते हैं कि मैं आपको दुर्बल मानकर आपकी सहायता से दूर हट रहा हूँ। सच्चाइ यह है कि मैं आपके विषय मं कुछ नहीं जानता कि आप दुर्बल हैं या सबल। यदि आप मुझे सम्पन्न समझकर मेरी सहायता के इच्छुक हों तो न म इस योग्य हूँ न ही मैं ऐसी सहायता का काम कभी करता हूँ। मैं तो ऐसे साथियों के साथ जुड़कर काम कर रहा हूँ जो इस व्यवस्था से दुखी हैं, कुछ करना चाहते हैं तथा करने की क्षमता रखते हैं। आप ज्ञान तत्व पढ़ते हैं किन्तु कभी आपने मेरे विचारों पर कोई साथक बहस में सहभागिता नहीं की है। अतः अभी मुझे आपकी तड़प, आपकी क्षमता तथा आपके चिन्तन का आकलन करके और कभी किसी अन्य कार्यक्रम में बैठकर चर्चा हो तभी हम आपके आमंत्रण में स्वीकृति दे सकेंगे। आशा है कि आप अपने कार्यक्रम के परिणामा से अवगत कराने की कृपा करेंगे।

### 12/1/86 घ प्रश्न 3 श्री जयशंकर कुमार, तेतरी, बेगुसराय, बिहार

**प्रश्न**— ज्ञान तत्व अंक तिरासी मिला। अपने लोक प्रदेश के कार्यकर्ताओं की सूची भेज दूंगा। आप जब भी खबर करेंगे तभी सम्मेलन रखा जा सकता है। सम्मेलन के स्वरूप पर कुछ और प्रकाश डालें। मैं पिछले कई माह से अनुसंधान कार्य के निमित्त बाहर रहा किन्तु निरंतर आपके साथ मानसिक रूप से जुड़ा रहा। अब लौट आया हूँ। अब पूरी सक्रियता से यह काम बढ़ाने में लगूंगा।

**उत्तर**— आप हमारी राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सम्मानित सदस्य रहे भी हैं और हैं भी। पूर्व में लोक स्वराज्य मंच शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप न्यूनतम होने के पक्ष में जनमत जागरण तक सीमित था। पांच अक्टूबर चार से लोक स्वराज्य मंच ने जनमत जागरण को कुछ और स्पष्ट करके त्रिसूत्रीय संविधान संशोधन अभियान दो हजार नौ तक पूरा हो जावे और हम नये वातावरण में बैठकर नई राजनैतिक व्यवस्था के माध्यम से समाज की ग्यारह समस्याओं से मुक्ति के प्रयत्न करें। हमारा प्रयास दोनों दिशाओं में एक साथ चलता रहेगा। हम त्रिसूत्रीय संविधान संशोधन अभियान लोक स्वराज्य मंच के संगठन तले जोर शोर से चलाते रहेंगे तथा ज्ञान यज्ञ भी साथ साथ चलता रहेगा जिसमें नई व्यवस्था के प्रारूप पर स्वतंत्र विचार मंथन होता रहे।

सम्मेलन रखने के विषय में मेरे निम्न सुझाव हैं :—

(1) सम्मेलन लोक प्रदेश स्तर, जिला स्तर या स्थानीय स्तर का हो सकता है। लोक प्रदेश स्तर के सम्मेलन में पांच लोक सभा क्षेत्रों के न्यूनतम एक एक जिम्मेवार प्रतिनिधि का होना आवश्यक है। अन्य लोग जिला स्तर के हो सकते हैं। इसी तरह जिला सम्मेलन में न्यूनतम पांच लोग पांच विकास खंडों के जिम्मेदार लोग अवश्य हों। अन्य लोग स्थानीय हो सकते हैं। स्थानीय सम्मेलन में सभी लोग हो सकते हैं।

(2) सम्मेलन में अपने कार्य से जुड़े लोग भी हो सकते हैं और अन्य भी। किन्तु न्यूनतम उपस्थिति पचास अवश्य होनी चाहिये। इस हेतु आप तीन चार सौ लोगों से सम्पर्क करेंगे तब पचास ही उपस्थिति आजकल हो पाती है।

(3) सम्मेलन का समय तीन घंटे का रखें। यदि कार्यकर्ताओं की उपस्थिति अधिक हो तब तो सम्मेलन की अवधि बढ़ा सकते हैं अन्यथा यदि सामान्य श्रोता ही अधिक होने की उम्मीद हो तो तीन घंटा ही पर्याप्त है।

(4) सम्मेलन की समाप्ति के मय लोक स्वराज्य मंच का लोक प्रदेशीय या जिला स्तरीय, या स्थानीय, जैसा सम्मेलन हो, सबकी राय से कायकारिणी का गठन किया जा सकता है।

(5) सम्मेलन के लिये खर्च की व्यवस्था आप स्थानीय चंदा दान या किसी माध्यम से कर सकते हैं।

(6) सम्मेलन के अतिरिक्त आप चाहें तो मेरा स्वतंत्र भाषण कहीं और भी रख सकते हैं। वह स्थान अधिवक्तागण, स्कूल कॉलेज, आर्यसमाज, गायत्री परिवार, सर्वोदय, व्यापार संघ, आफीसर्स क्लब, महिला मंडल या कोई और समूह के बीच हो सकता है। किन्तु ऐसा आयोजन सिर्फ वहीं हो सकता है जहाँ सम्मेलन का भी आयोजन हो। सिर्फ स्वतंत्र भाषण के लिये मुझे पृथक से विचार करना होगा।

(7) आपकी सम्मेलन की स्वीकृति के बाद ही मैं तिथि और समय को आपको इस तरह सूचना दूंगा कि न्यूनतम दो माह पूर्व आपको जानकारी हो तथा मुझे भी एक साथ कई सम्मेलनों की सुविधा हो।

(8) सम्मेलन के कुछ दिन पूर्व आप तैयारियों क लिये एक बैठक रखकर विचार करें। इस बैठक में हम अपने किसी राष्ट्रीय पदाधिकारी को भेजने का प्रयास करेंगे।

इस संबंध में और जानकारो बची हो तो पत्र से पूछ सकते हैं। देश भर के आप जैसे वर्तमान व्यवस्था को बदलने की इच्छा रखने वाले सैकड़ों मित्रों के बल पर ही हमन यह असंभव कार्य पांच वर्ष में पूरा करने की घोषणा की है। आशा है कि आप लोगो की सहमति का पत्र शीघ्र ही प्राप्त होगा।

## 6/2/86 च प्रश्न 4 श्री अवनीश चन्द्र पाल, कलकत्ता, पश्चिम बंगाल

**प्रश्न**— जनसत्ता इक्कीस दिसम्बर के पृष्ठ दो में ''यूरोप और अमेरिका में मुसलमानों के प्रति संदेह का भाव'' शीर्षक से एक सर्वेक्षण रिपोर्ट प्रकाशित हुई हैं जिसक अनुसार अमेरिका के चौवालीस प्रतिशत, स्वीडन के पचहत्तर प्रतिशत, ब्रिटेन में उन्चालीस प्रतिशत, हालैण्ड में बहत्तर प्रतिशत तथा डेनमार्क में सरसठ प्रतिशत नागरिकों ने अपने देश के मुसलमानों पर संदेह और नाराजगी प्रकट की। सब जगह को मिलाकर औसत बावन प्रतिशत ने कहा कि वे मुसलमानों पर विश्वास नहीं करते।

आप बताइये कि क्या यह उचित है ? क्या पश्चिम के लोगों को ऐसा भेदभाव पूर्ण व्यवहार करना चाहिये ? इस संबंध में भारत की स्थिति क्या होगी ?

**उत्तर** — आप किसी व्यक्ति से सार्वजनिक जीवन में तो भेदभाव रहित व्यवहार की अपेक्षा कर सकते हैं किन्तु वह आप पर विश्वास भी करें यह उसकी अपेक्षा आपके व्यवहार पर अधिक निर्भर करता है। अमेरिका तथा अन्य यूरोपीय देशों में इस्लाम के प्रति नागरिक संवेदना के जो आंकड़े प्राप्त किये गये हैं वे आम मुसलमानों के व्यवहार के कारण है न कि उनके भदभाव पूर्ण व्यवहार के कारण। कट्टरपंथी मुसलमानों की सोच और आम मुसलमानों की उनके प्रति सहानुभूति इस संदेह का एक प्रमुख कारण है। कट्टरवाद ने मुसलमानों को अपना विस्तार करने में भरपूर सहायता की किन्तु कट्टरवाद की अति विपरीत परिणाम भी दे सकती है, जसा कि अभी हो रहा है। सारी दुनिया में मुसलमान लगातार अविश्वसनीय होते जा रहे हैं और भविष्य में भी सुधार के कोई लक्षण नहीं हैं। अपनी अविश्वसनीयता का कारण मुसलमानों को अपनी सोच में ही खोजने का प्रयास करना चाहिये।

भारत में भी यदि सर्वेक्षण करें तो तीन चौथाई लोग ऐसे हैं जो धार्मिक मामलों में मुसलमानों को अतिवादी मानते हैं। आम लोग मुसलमानों को संदेह की नजर से देखते हैं। यहाँ तक कि कांग्रेस के लोग या वामपंथियों को छोड़कर अन्य धर्म निरपेक्ष लोग भी व्यक्तिगत चर्चा में यह बात स्वीकार करते हैं। यह पृथक बात है कि राजनैतिक शब्दावली में वे मसलमानों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करें। भारत में मुसलमानों को अपनी कट्टरता पर गहन विचार करने में सबसे बड़ी बाधा के रूप में वामपंथी हैं जो मुसलमानों को नई परिस्थिति में ढाल के रूप में उपयोग करना चाहते हैं। शीतयुद्ध में पराजित होने के बाद साम्यवादियों को मुसलमान ही एक ऐसी मजबूत कड़ी दिखी जिसके सहारे वे अपने विरोध को जीवित रख सकते हैं। उन्होंने पूरी सक्रियता

से इसमें सफलता भी पाई। पूरी दुनियॉ के मुसलमान अपनी नासमझी से उनके जाल में फंसते गये। परिणाम यह है कि वे पूरी दुनिया में अविश्वसनीय होते जा रहे हैं।

भारत में भी मुसलमानों के प्रति वास्तविक धारणा बनने में संघ परिवार सबसे बड़ी बाधा है। धारणा बनने में विचारों का महत्व होता है, भावना का नही। संघ परिवार अनावश्यक हल्ला कर कर के वैचारिक सोच में बाधक बन जाता है। भावनात्मक उबाल तात्कालिक लाभ दे सकता है स्थायी नहीं। मुसलमानों ने भी भावनात्मक उबाल का लाभ उठाकर स्वयं को लगातार मजबूत किया तथा संघ परिवार ने भी उसी तरीके से तरक्की की। अब मुसलमान भी संकट में फंस रहे हैं और संघ परिवार की तो हवा निकल ही गई है। मेरे विचार में मुसलमानों को यदि समाज का विश्वास प्राप्त करना है तो अपनी करतूतों पर गंभीर विचार करना होगा और यदि भारत में हिन्दुओं के बीच मुसलमानों की सही तस्वीर आनी चाहिये तो संघ परिवार को अपनी रणनीति बदलनी होगी।

## 2/17/86 छ प्रश्न 5 श्री वधराज जी आहूजा, चन्द्रशेखर आजाद होटल, भानूप्रतापपुर, कांकेर, छत्तीसगढ़ 494669

**प्रश्न** — ज्ञानतत्व अंक चौरासी में आपने जाहिराशेख के बदलते बयानों के आधार पर अपनी टिप्पणी करते हुए लिखा है कि जाहिरा अपना बयान बदलकर आज जो कह रही है वह भले ही सच हो किन्तु विश्वास नहीं होता। भारत का बच्चा बच्चा समझता है कि जाहिरा झूठ बोल रही है। आपका यह कथन मुझे सच नहीं लगा। मेरे विचार में जाहिरा आज जो कुछ कह रही है वह सच है। आप अपने कथन को थोड़ा और स्पष्ट करें।

**उत्तर** — जब भी किसी प्रकरण में दो विपरीत बयान आते हैं और उसकी सच्चाई जानने का किसी एक व्यक्ति के कथन के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं तो सच्चाई का आकलन उक्त कथनकर्ता की विश्वसनीयता पर निर्भर करता है। मान लीजिये कि किसी एक घटना के दो प्रत्यक्षदर्शी गवाहों की गवाही विपरीत हा जिसमें एक गवाह अटलबिहारी या विश्वनाथ प्रताप सिंह जी हो और उसके ठीक विपरीत गवाही लालू प्रसाद या जयललिता जी दें तो अटल जी या विश्वनाथ प्रताप जी की गवाही को आम नागरिक सच मानेगा भले ही वह झूठ ही क्यों न हो। यह विश्वसनीयता का सवाल है। जाहिरा शेख राष्ट्रीय स्तर पर एक अज्ञात नाम है। उसकी न विश्वसनीयता है न अविश्वास का ही कोई कारण है। गुजरात प्रकरण में नरेन्द्र मोदी की सरकार या उनके अन्य साथियों की संलग्नता पूरी तरह उनकी शक्ति और चरित्र के आधार पर ऐसा लगता है कि जाहिरा को लोभ लालच से बयान बदलने को तैयार किया गया होगा। जाहिरा का यह कथन कि तीस्ता शोतलवाड ने उसे जान से मारने को धमकी देकर बयान दिलवाया, विश्वसनीय नहीं लगता क्योंकि पहली बात तो तीस्ता के व्यक्तिगत हित उक्त बयान से बहुत अधिक संबंध नहीं है दूसरे यह कि तीस्ता की जान मरवाने की शक्ति भी प्रत्यक्ष नहीं दिखती। ऐसी स्थिति में मैंने अपना मत व्यक्त किया है। आज वह जो कुछ कह रही है वह सच भी हो सकता है किन्तु मुझे विश्वास नहीं है।

## 4/1/86 ज प्रश्न 6 सुलक्षणा व्यथित, द्वारी चक, पथरगामा, गोड्डा, झारखंड 814147

**प्रश्न**— आपने सविधान में तीन संशोधन सुझाए हैं। मै उसमें एक चौथा संशोधन जोड़ने का प्रस्ताव करती हूँ कि जो दागी, गुण्डा, बदमाश और भ्रष्ट है उसे संसद का चुनाव लड़ने के अयोग्य कर दिया जाय। ये लोग वहॉ जाकर क्या कर सकते हैं, सिवाय अपराध वृद्धि के। मेरा यह भी सुझाव है कि हम सैद्धान्तिक विचार मंथन के साथ साथ सेवा कार्य जैसे व्यावहारिक कार्यो को भी कार्यक्रम म जोड़कर आगे बढ़े तो हमारा लोक स्वराज्य मंच जल्दी तरक्की करेगा।

**उत्तर**— आपका सुझाव दिखता बहुत आसान है किन्तु परिणाम शून्य होगा। गुण्डा, बदमाश और भ्रष्ट चुनाव न लड़े यह बिल्कुल ठीक सुझाव है, ऐसा व्यक्ति मंत्री न बने यह भी ठीक है, किन्तु कौन व्यक्ति गुण्डा, बदमाश, भ्रष्ट या अपराधी है इसका निर्णय कौन करेगा ? आप जो भी प्रक्रिया बनवायेंगे उसी प्रक्रिया के अन्तर्गत ये निर्दोष प्रमाणित का प्रमाणपत्र ले लेंगे। मुझे तो लगता है कि ऐसा कानून बनने के बाद कुछ शरोफ लोग ही अपराधी प्रमाणित होकर चुनाव से वंचित किये जा सकते हैं। इस सुझाव के साथ साथ आप यह भी सुझाव दें कि अपराधी प्रमाणित करने की प्रक्रिया क्या होगी।

आपने लोक स्वराज्य मंच को सेवा काय से जुड़ने की सलाह दी है। सेवा कार्य हेतु धन कहॉ से आयेगा। मेरे विचार में सेवा कार्य व्यवस्था परिवर्तन में सहायक नहीं होगा।

5/3/86 झ प्रश्न 7 — जाहिरा शेख और बेस्ट बेकरी मामले में न्यायालय की भूमिका पर आपकी टिप्पणी चाहिये। जाहिराशेख के न्यायालय में बार बार बयान बदलने से न्यायपालिका की स्थिति क्या होगी।

उत्तर — प्रजातंत्र में न्याय और व्यवस्था एक दूसरे के पूरक भी होते हैं तथा नियंत्रक भी। न तो न्यायपालिका को न्याय करने का एक छत्र अधिकार है न हो विधायिका को विधान बनाने का। दोनों पर एक दूसरे का अप्रत्यक्ष सामंजस्य भी है और नियंत्रण भी। न्यायपालिका का न्याय Justice According to law तक सीमित है। न्याय क्या हो इसकी व्यवस्था विधायिका द्वारा बनाये गये कानून तक सीमित है। इसी तरह विधायिका द्वारा बनाये गये कानून तक सीमित है। इसी तरह विधायिका भी कानून बनाने की स्वतंत्रता के स्थान पर Law According to Justice से प्रतिबद्ध है। कानून के न्यायसंगत होने की समीक्षा न्यायालय करता है। दोनों मिलकर भारतीय संविधान से बंध है।

पिछले कुछ वर्षो से दोनो ने अपनी अपनी सीमाऍ तोड़नी शुरू कीं। यद्यपि इस मामले मं विधायिका ने ही पहल की किन्तु न्यायपालिका भी इस सीमा तोड़ प्रतिस्पर्धा में बहुत आगे बढ़ती गयी। परिणाम हुआ कि व्यवस्था कमजोर होती चली गई। न्यायपालिका का कर्तव्य था कि वह न्याय को मजबूत करने के लिये व्यवस्था में उचित संशोधन की सलाह देती और यदि व्यवस्था अपनी खामियॉ को दूर करने के लिये उक्त संशोधन नहीं करती तो व्यवस्था को उक्त संशोधन करने के लिये उचित व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करती। किसी भी हालत में व्यवस्था के माध्यम से ही न्याय का मार्ग प्रशस्त करना चाहिये था। न्याय का दायित्व व्यवस्था से दूर हटकर न्यायपालिका को तो अपने हाथ में ही नही लेना चाहिये। किन्तु ये सीमाऍ लगातार टूट रही है। न्यायपालिका न्याय प्रदान करने के लिये इतनी आतुर है कि उसे न व्यवस्था की परवाह है न प्रतीक्षा। इसके परिणाम स्वरूप व्यवस्था कमजोर होती जा रही है।

पूरे भारत में व्यक्ति को न्यायपालिका के माध्यम से न्याय दिलाने के प्रयास का एक फैशन सा चल पड़ा है। अनेक सामाजिक संस्थाऍ सिर्फ इसी काम में व्यस्त रहती है। जनहित याचिका के नाम पर इस प्रयास में और भी वृद्धि हुई है। प्रारंभ में तो लोगों को बहुत आनन्द आया क्योंकि उन्हें न्यायालय से सीधा न्याय मिलने लगा। अनेक कार्य, जो व्यवस्था सुनने के लिये तैयार नहीं थी, वे आनन फानन में सम्पन्न हो गये। किन्तु धीरे–धीरे दुष्परिणाम भी आने ही थे। जाहिरा शेख का मामला एकाएक आकर व्यवस्था और न्याय के बीच फंस गया। व्यवस्था बनी हुई है कि न्यायालय में दिये गये बयान को दुबारा लने का कोई प्रावधान नहीं है। मेरी व्यक्तिगत जानकारी के अनुसार भी प्रतिदिन अनेक ऐसे मुकदमों में मुल्जिम छूट जाते हैं जिसमें गवाह भयवश या पैसे के लेन देन से गवाही पलटता है। जाहिरा ने न्यायालय के समक्ष बताया कि गुजरात न्यायालय में दिया गया उसका बयान भयवश था और वह किसी अन्य न्यायालय में सच बताना चाहती हैं। न्यायालय ने एक अभूतपूर्व कदम उठाते हुए उसको दुबारा गवाही की व्यवस्था कर दी। मेरे विचार में यह काम संसद के माध्यम से होना चाहिये था कि ऐसी परिस्थिति से निपटने के लिये व्यवस्था में क्या और कैसा बदलाव होना चाहिये। जिस दिन न्यायपालिका ने निर्णय देकर मामले को फिर से खोलने का आदेश दिया उस दिन यद्यपि मैं मानता था कि जाहिरा अब गवाही देकर अपराधियों को सजा दिला देगी, मुझे यह जरा भी संदेह नहीं था कि जाहिरा पलट जायेगी। किन्तु मुझे ऐसा अवश्य लगता था कि अत्यधिक न्यायिक सक्रियता परंपरा से हट रही है। मैं मन में प्रश्न करता था कि यदि जाहिरा फिर से पलट जाये तो कैसा न्यायिक संकट आ सकता है ? न्यायपालिका के समक्ष अभूतपूर्व स्थिति होगी कि वह किस बयान पर विश्वास करे ? और मेरी जो शंका थी वही हुआ। जाहिरा पलट गई। देश के अधिकांश न्याय प्रेमी हतप्रभ हैं। कुछ न्यायप्रेमी तो जाहिरा पर बयान पलटने के लिये न्यायालय की मानहानि का मुकदमा तक करने की मांग कर रहे हैं। यह मांग तो मेरी समझ में बिल्कुल ही नहीं आतीं क्योंकि यदि न्यायालय में दिये गये बयान को बदलना अपराध है तो गुजरात न्यायालय में दिये गये बयान को बदलकर फिर से या दूसरा बयान देने की मांग करना और पहले दिय गये बयान को स्वयं ही झूठा घोषित करना क्या न्यायालय की अवमानना नहीं थी ? क्या कोई ऐसी व्यवस्था भी संभव है कि यदि ऐसी संस्थाऍ बयान बदलने हेतु प्रेरित करें तो आदर्श और दूसरी संस्थाऍ परित करें तो मानहानि माना जाय। मूल प्रश्न यह नहीं है कि जाहिरा ने क्या किया, मूल प्रश्न यह है कि हम बिना व्यवस्था में परिवर्तन कराये सीधे न्याय दिलाने के प्रयत्नों की मांग क्यों करते हैं जो व्यवस्था को कमजोर करें। मेरे विचार में जाहिरा शेख प्रकरण ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि न्यायपालिका अपनी सम्पूर्ण कार्यप्रणाली पर पुनः विचार करे और न्याय प्रदान करने की जल्दबाजी में कोई ऐसा काम न करे जिससे समानान्तर व्यवस्था का आभास होता हो। लोगों का न्याय नहीं मिल रहा है यह सच है। व्यवस्था दूषित हो गई है यह भी सच है। न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के तीनों प्रमुख मुख्य न्यायधीश, राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री एक साथ बैठकर ऐसी परिस्थिति पर विचार करें और कोई मार्ग निकालें। अन्यथा जल्दबाजी के प्रयास सामंजस्य को कमजोर करेंगे। जिसका सारा दुष्परिणाम ''न्याय'' को ही भुगतना पड़ेगा।

## 21/1/86 ट प्रश्न 8 श्री राजवीर सिंह, महावीर एन्क्लेव, नई दिल्ली 110045

**प्रश्न** — श्री सुनील एक्का जी के सहयोग से ज्ञान तत्व का ग्राहक बना। पढ़ने पर मुझे ज्ञान हुआ। मैं भी कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ :–

**(1)** अपराध करने वाले को दण्ड कितने समय में मिलना चाहिये ? समय सीमा म ही दण्ड मिल इसके उपाय क्या हो ?

**(2)** धनंजय को फांसो देने में चौदह वर्ष क्यों लगे। चौदह वर्ष की कड़ी सजा भुगतने के बाद फांसी देना कितना उचित था ?

**(3)** न्याय के लिये ग्राम प्रधान तथा सरपंच की भूमिका शून्य क्यों है ?

**(4)** सरकार एक ओर तो टैक्स लगाती है, दूसरी ओर टैक्स बचाने की भी योजना घोषित करती है। टैक्स बचाने की योजनाऍ गलत हैं। आपकी नीति क्या है?

**उत्तर**— अपराध और दण्ड क बीच कम से कम समय बीतना चाहिये। सैद्धान्तिक रूप से तो यह समय सीमा घोषित नहीं हो सकती किन्तु व्यावहारिक रूप से हो सकती है। यह समय सीमा वर्तमान समय मे सिर्फ कागजों तक सीमित है, वास्तव में नहीं। पुलिस और न्यायालयों पर Work Load लगातार बढ़ाया जा रहा है किन्तु बजट नहीं बढ़ रहा। ऐसी स्थिति में समय सीमा का निर्धारण धोखा देने के सिवाय कुछ और नही है। अपराध और दण्ड के बीच उचित समय सीमा के लिये पांच पकार के अपराध छोड़कर बाकी सभी मुकदमें ग्राम पंचायत तथा अन्य स्थानीय इकाइयों को सौंप दें। नब्ब प्रतिशत तक बोझ कम हो जायेगा। इसके साथ साथ पुलिस और न्यायालय पर खर्च के बजट में भारी वृद्धि कर दें। मैं समझता हूँ कि अपराधों की सजा में होने वाला विलम्ब बिल्कुल कम हा जायेगा। सबसे बड़ी बाधा यह है कि वर्तमान व्यवस्था आज तक अपराध और गैरकानूनी का अन्तर ही नहीं समझती है। हत्या, बलात्कार और आतंकवाद जैसे अपराधों के साथ साथ दहेज, आदिवासी, हरिजन, बाल विवाह, गांजा जैसे गैर कानूनी कार्यो को जोड़कर वास्तविक अपराधों के नियंत्रण में बाधा पैदा की जाती है। यह दूर करनी चाहिये। या तो गैर कानूनी कार्यो की छूट दे देनी चाहिये या स्थानीय इकाइयों को सौंप दें।

धनंजय को फांसी में चौदह वर्ष लगे यह धनंजय द्वारा की गई अपीलों के कारण हुआ। यदि अपील करना धनजय का अधिकार था तो विलम्ब होना उसका स्वाभाविक परिणाम था। क्या फांसी पहले देकर अपील होती है ? चौदह वर्ष धनंजय ने विचाराधीन के रूप में बिताये थे कैदी के रूप में नहीं। किसी भी मामले में सजा शीघ्र हो यह तो मैं मान सकता हूँ किन्तु धनंजय के साथ कोई अन्याय हआ ऐसा मैं नहीं मानता।

टैक्स लगाने का तरीका पूरी तरह अव्यावहारिक है यह मैं मानता हूॅं। टैक्स का हमने नया तरीका सुझाया है कि सभी कर समाप्त करके सम्पूर्ण सम्पत्ति पर दो प्रतिशत वार्षिक का कर लगा दें तथा सभी प्रकार की रियायत समाप्त करके एक मुश्त नगद छूट दे द। इससे अनेक विसंगतियॉ दूर हो जायेगी।